जैन पुरातत्व एवं कला

मधुसूदन नरहरि देशपान्डे

जब हम प्राचीन भारतीय स्थापत्य-शिल्प और चित्र-कला के विकास का विहंगावलोकन करते हैं तब हमें एक विशिष्टता प्रतीत होती है कि इन कलाओं के विकास का एक अखण्ड और शक्तिशाली प्रवाह रहा है। जो लोग ऐसा समझते हैं कि बौद्ध, हिन्दू और जैन धर्माधिष्ठित कला का पृथक्-पृथक् प्रवाह रहा है; वास्तव में उनको भारतीय संस्कृति का मर्म ही ज्ञात नहीं है, ऐसा कहना पड़ेगा। भारतीय कला के विकास में धार्मिक स्थलों को सौन्दर्यपूर्ण विकास करने की भावना, मूर्ति-पूजा और तदनुसंगिक धर्माचरण में प्रेरणादायक होती है। राजा हो या धनिक दाता हो या सामान्य मानव हो, हर एक ने अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप भारतीय संस्कृति के कला भण्डारों से अद्भुत एवं सुन्दर रत्न निकाले हैं। और अपनी-अपनी निष्ठा और श्रद्धा के अनुरूप कलात्मक वस्तु या वास्तु का निर्माण किया है; उन सभी का मूल्यांकन और रसास्वादन भी भारतीय कला के आविष्कार के रूप में ही होना चाहिए। हर एक शैली में कम या अधिक वैशिष्ट्य जरूर होता है परन्तु भारतीय कला के पुष्पहार में धर्मनिष्ठ पृथकत्व की कल्पना करना सर्वथा अयोग्य और अनुचित है। वैसे देखा जाय तो शैली भी कालानुरूप परिवर्तित होती रहती है, लेकिन इस शैली के ऐसे परिवर्तन में आशय, प्रेरणा और प्राणतत्व की दृष्टि से मूलभूत परिवर्तन कभी होता ही नहीं। अपितु परिवर्तन के स्वरूप में परिवर्धन, संशोधन और संवर्धन होता है। इसीलिए भारतीय कला के प्रांगण में आशय, प्रेरणा और प्राण-तत्व की दृष्टि से सर्वत्र एकरूपता ही दृष्टिगोचर होती है। ऐसे कला-प्रवाह में अलग-अलग स्रोत की कल्पना करना, वैसा ही हास्यास्पद होगा, जैसा कि त्रिवेणी प्रवाह से गंगा, यमुना और सरस्वती के स्रोतों को अलग करना। भारतीय संस्कृति के गर्भ से पैदा हुए आचार, विचार और संस्कारित हुए कलात्मक मान-बिन्दु, जब तत्कालीन कला माध्यम से अपना रूप धारण करते हैं तब उनमें पृथकत्व देखना भारतीय कला संस्कृति की महती परंपरा पर अन्याय करने के समान है।

जैसा कि ईसा पूर्व तीन शताब्दि से मथुरा नगरी बौद्ध, हिन्दू और जैन कला का मायका माना जाता है। परन्तु वहाँ की कला "भारतीय कला" इसी नाम से जानी पहचानी जाती है। वहाँ उक्त तीनों धर्म प्रचलित थे। अपने-अपने धर्म के अनुयायी अहंमहमिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की भावना से स्तूप, मूर्ति, भवन और प्रासाद निर्माण करने लगे। हर-एक के पीछे जो आशय और रचना का ढंग था, उसके पीछे थोड़ी-सी भिन्न (अलग) प्रेरणा थी परंतु कलामूल्य और कला माध्यम की दृष्टि से उन सब में एक विलक्षण साम्य प्रतीत होता है। गुप्त कालोत्तर बनाए हुए जैन और हिन्दू मन्दिर स्थापत्य और कला की दृष्टि से अलग नहीं हैं। विषय अलग हो सकते हैं लेकिन उनका कलात्मक रूप सम्पूर्ण एकात्मक एवं भारतीय है। इस पार्श्वभूमि में भारतीय कला में जैनों का योगदान क्या रहा है? इसका सामान्य परिचय इस संक्षिप्त लेख में दिया जा रहा है। परंतु इससे पहले जैन धर्म के उद्‌गम और विकास पर दृष्टिपात करना उपयुक्त होगा।

श्री वर्द्धमान महावीर स्वामी जैनों के चौबीसवें तीर्थंकर माने जाते हैं। इस वर्ष हम उनके महानिर्वाण की 25 वीं शताब्दी मना रहे हैं। उनसे पहले परंपरा के अनुसार 23 तीर्थंकर हो चुके थे। उनमें से तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे, जो महावीर स्वामी के महानिर्वाण से 250 वर्ष पूर्व हो चुके थे। ऐसे विश्वसनीय प्रमाण मिलते हैं कि वे एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक पुरुष थे। उन्होंने "चाउज्जाम धम्म" (चार व्रतों का धर्म) प्रतिपादित किया। उसी को "पंच सिक्खिओ" (पंच महाव्रतयुक्त) बनाकर महावीर जी ने पुनः प्रतिपादित किया ऐसा उल्लेख उत्तराध्ययन सूत्र में मिलता है। "चाउज्जमों या जो धम्मो, जो इमो पंच सिक्खिओ। देसिओ बद्धमाणेण पासेण य महामुनी" यह चतुर्याम धर्म है, जिसका प्रतिपादन महामुनि पार्श्वनाथ ने किया था और यह पंचशिखा युक्त धर्म है जिसका प्रतिपादन वर्द्धमान महावीर जी ने किया। भगवान महावीरजी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने इस धर्म का उपदेश लोक भाषा में किया, "सव्वाणुगामिणीए सक्कर मधुराए भाषाए" अर्थात् सबको सहजरूप से समझ में आनेवाली शर्करा के समान मधुर भाषा का सहारा लिया। उच्च वर्ग की संस्कृत भाषा को त्याग करके उन्होंने अहिंसा और त्यागमय नैतिक जीवनयुक्त तत्वज्ञान का उपदेश लोकभाषा में दिया। इतना ही नहीं उन्होंने मोक्ष का द्वार जनसाधारण के लिए खोल दिया। यज्ञ कांड प्रचुर ब्राह्मणी वर्चस्व और जातिनिष्ठ परंपरा से जनता को निकालकर मुक्ति का एक प्रशस्त मार्ग दिखाया। उन्होंने ब्राह्मण की व्याख्या ही बदल डाली—

न हि मुडिए समणो, न ओंकारेणे बम्भणो।
न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण, न तावसो॥
समयाए समणो होई, बम्भचारेण बम्भणो :
नाणेण च मुणी होई, तवेण होइ तावसो॥

(उत्तराध्ययनसूत्र)

अर्थात् मुंडन करने से कोई श्रमण नहीं होता, ओंकार का जप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता, अरण्यवास करने से कोई मुनि नहीं होता और कुशवस्त्र पहनने से कोई तपस्वी नहीं होता। अपितु समभाव से श्रमण; ब्रह्मचर्य पालन करने से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है।

भगवान महावीर लोकाभिमुख नेतृत्व से सामान्य जनों को तर्कप्रधान विचार करने में बड़ी सहायता मिली। इस प्रकार ईसा पूर्व 6वीं शताब्दी में लगाया गया नव विचार और नवधर्म का नन्हा-सा पौधा अब महावृक्ष बन गया है और उसके पुष्पपरिमल से आसेतु हिमाचल पर्यन्त की भारत भूमि सुगन्धित हो गयी है।

प्राकृत (अर्ध-मागधी भाषा) में रचित आगम साहित्य, श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन साहित्य, महाराष्ट्री अपभ्रंश में और संस्कृत भाषा के अन्तर्गत विविध टीका साहित्य पैतृक दैन के रूप में भारत की सब भाषाओं को प्राप्त हुआ है। इस साहित्य सम्पदा का परीक्षण भारतीय संस्कृति के विकास के सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्रोतों पर प्रकाश डालता है, जैसे साहित्य, स्थापत्य, कला, तत्वज्ञान, सामाजिक जीवन, धर्माचरण और भारतीय भाषाओं का क्रमिक विकास इत्यादि। इस धर्म के विकास में चेदि कलिंग नृपति खारवेल से कुषाण, गुप्त, चालुक्य, राष्ट्रकूट, चोल, पांड्य, गंग, परमार, चन्देल, यादव, होयसल, विजयनगर आदि अनेक राजवंश नृपतियों और धनिक श्रेष्ठियों तथा श्रावक-श्राविकाओं का उल्लेखनीय योगदान रहा है। इतना ही नहीं मुगल सम्राट अकबर के विचारों पर भी जैन मत का प्रभाव पड़ा था। महात्मा गांधीजी की विचार-धारा पर भी जैन धर्म और आचार का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है।

प्राचीन भारत में इस धर्म की नींव समण (श्रमण) नाम से संबंधित किये जानेवाले और एक स्थान से दूसरे स्थान पर अखंड परिभ्रमण करनेवाले अत्यन्त कठिन व्रतधारी साधुओं ने डाली थी। श्रमणों की एक बहुत प्राचीन परंपरा है। प्राचीन जैन और बौद्ध वाङ्मय में ऐसे श्रमण समुदायों का उल्लेख मिलता है: —

"संबहुला नानातिथ्थिया नाना दिठ्ठिका,
नाना रुचिका, नानादिठ्ठिनिस्सर्थानिस्सिता,"

अर्थात् "बहुत बड़ी संख्या में अनेक गुरुओं को माननेवाले, विविध आचार-विचार, विविध योग, प्रवृति के विविध रुचिवाले और विविध दार्शनिक विचारधारा में विश्वास करने वाले ऐसे विविध सम्प्रदाय वाले भारतसमाज की पार्श्वभूमि पर बुद्ध और महावीर दीपस्तम्भ जैसे दिखाई देते हैं। उन्होंने दीर्घ और गहरा विचार मंथन करके अपनी स्वतन्त्र अनुभूति से नवीन धर्म की नींव डाली। बौद्ध धर्म को माध्यम मार्ग (मज्जिमा पटिपदा) के रूप में हम सब जानते हैं। जैन मत में उग्र तपस्या अभिप्रेत है। परन्तु ऐसे कठोर तपस्या मार्गी पंथ ने भी कला के क्षेत्र में अत्यन्त महत्व का कार्य किया है, यह एक बड़ा विरोधाभास है। लेकिन वस्तुस्थिति ऐसी है कि एक तरफ श्रमणों ने अपने जीवन में असिधारा जैसे व्रती जीवन का आदर्श सँभाला और साथ-ही-साथ साहित्य और कलाप्रेमी श्रावक-श्राविकाओं ने अपने स्वाभाविक कला प्रेम से इस धर्म के तत्वज्ञान के साथ-साथ सुसंगत कला साधना भी आरम्भ की। जैन धर्मावलम्बी धनिक श्रेष्ठियों ने स्थापत्य कला में अग्रगण्य माने जाने वाले जिन-देवालय बनाये और भारतीय स्थापत्य कला को समृद्ध बनाया। भगवान महावीर जी की प्रमुख कार्य-भूमि बिहार राज्य थी। उनका जन्म वैशाली के निकट कुंडलपुर ग्राम में हुआ था और केवल ज्ञान की प्राप्ति के उपरांत महावीर जी ने मगध देश की राजधानी राजगृह में अंगदेश की राजधानी चम्पा में, विदेह के अन्तर्गत मिथिला में तथा श्रावस्ती में अपने वर्षावास व्यतीत किए।

जैन कला का पहला आविष्कार

जैन मूर्तिकला का पहला आविष्कार यथार्थ रूप से हमको बिहार में दिखाई देता है। पटना संग्रहालय में रखी एक मस्तकहीन दिगम्बर तीर्थंकर प्रतिमा, जो लोहानीपुर से प्राप्त हुई थी, मौर्य मूर्तिशिल्प की तरह चमकदार पालिशयुक्त है। बिहार में बक्सर के निकट चौसा ग्राम में पाई गई एक शताब्दी ईसा पूर्व की, कुषाणकालीन ऋषभ व पार्श्वनाथ की कांस्य प्रतिमाएँ जैन धातु शिल्प में अत्यन्त प्राचीन मानी जाती हैं। ये दोनों प्रतिमाएँ पटना संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

कलिंग, सौराष्ट्र और महाराष्ट्र की प्राचीन जैन गुफाएँ

मौर्य वर्चस्व के पश्चात् कलिंग देश के चेदि नृपति खारवेल ने ईसा पूर्व की दूसरी शताब्दी में जैन धर्मी श्रमणों के लिए कलात्मक गुफा-समूह उत्कीर्ण करके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

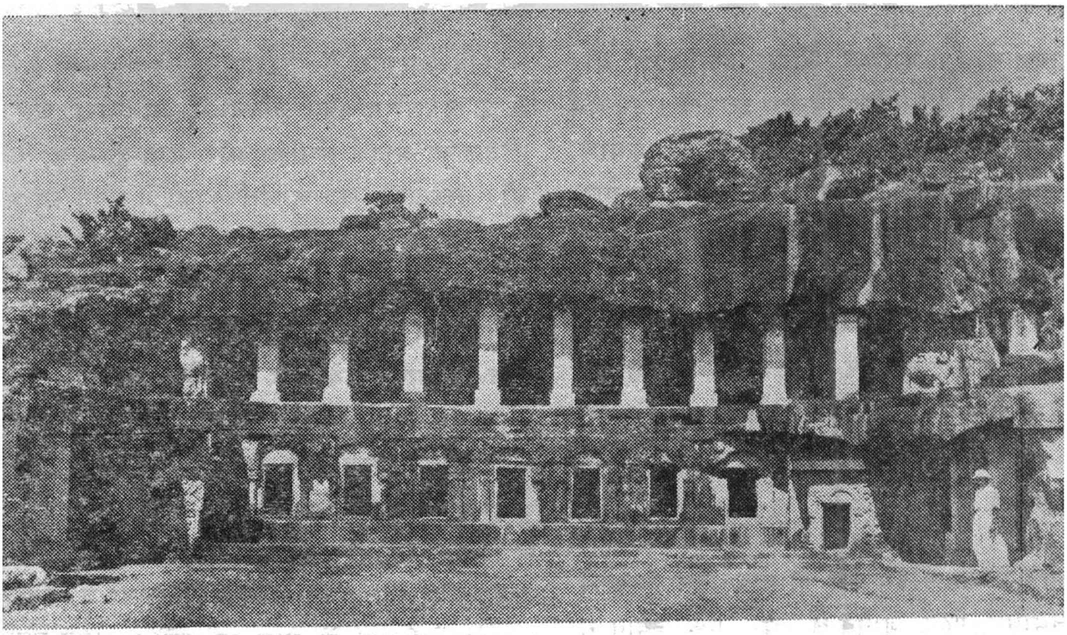

राणी गुम्फा का सुविख्यात दुमंजिला शैलगृह, उदयगिरि (ईसा पूर्व, २—री शताब्दी)

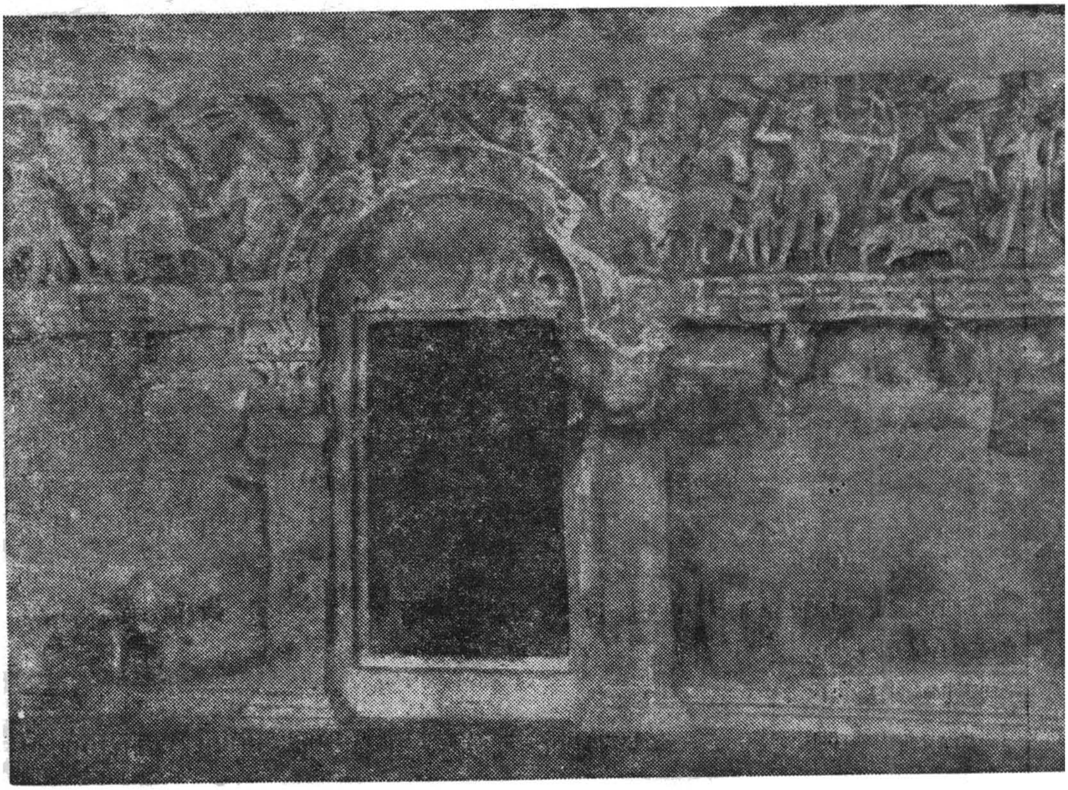

राणी गुम्फा में उत्कीर्ण शिल्पपट्ट उदयगिरी (ईसा पूर्व, २—री शताब्दी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक अप्रतिम कला आदर्श प्रस्तुत किया । ये गुफा समूह भुवनेश्वर नगर के निकट खंडगिरि और उदयगिरि नामक पहाड़ों में स्थित हैं । उदयगिरि पहाड़ पर हाथी नामक गुफा में खारवेल का एक सुप्रसिद्ध शिलालेख है, जिसका प्रारम्भ ही "नमो अरिहंताणं नमो सवसिधान" अर्थात् अर्हत् और सिद्ध के नमस्कार से ही हुआ है । खारवेल की अग्रमहिषी ने स्वप्नपुरी के लेख में लिखा है—"अरहंत पसादाय कलिंगन समनानं लेणंसिरि खारवेलस अगम महिसिन कारियाम"। उदयगिरि स्थित राणी गुम्फा और गणेश गुम्फा नाम से सुविख्यात दुमंजिले शिलागृहों में सुन्दर शिल्पपट उत्कीर्ण किये गये हैं । इनका विषय पार्श्वनाथ के जीवन से सम्बद्ध प्रसंगों से होगा, ऐसा कई विद्वानों का मत है । ये सुन्दर शिलापट शैली की दृष्टि से भाजा और भरहुत शिल्पकला के समान दिखाई देते हैं । खंडगिरि गुफा समूह में आठवीं और नवमीं शताब्दी में उत्कीर्ण कई जिन-प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं।

सौराष्ट्र में जूनागढ़ के निकट और भावनगर के पास तलाजा में जैन गुफा समूह क्षत्रपों के काल में उत्कीर्णित माना जाता है । उपरकोट की गुफा में स्थित स्तम्भ शीर्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

महाराष्ट्र में सह्याद्रि पर्वत माला पर ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर 6वीं और 7वीं शताब्दियों तक के शैल मन्दिर पाये जाते हैं । जिसमें अजन्ता, एलौरा कारला, भाजा, पितरखोरा, एलीफेन्टा आदि बौद्ध और हिंदू, गुफाएँ सुविख्यात हैं । हाल ही में पूना के पास कारला और भाजा बौद्ध गुफाओं के पास पालेगाँव की एक गुफा में ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का शिलालेख मिला है । "नमो अरहंताणं" से यह लेख आरम्भ किया गया है । यह प्राचीन गुफा जैन साधुओं के निवास के लिए सातवाहन राजाओं के वर्चस्व काल में बनाई गई होगी, ऐसी सम्भावना है ।

पालेगांव (पूना) की गुफा में प्राप्त नवीन शिलालेख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मथुरा नगरी और जैन कला

मथुरा एक कलानगरी के रूप में प्राचीन भारत में अनेक शताब्दियों तक विख्यात रही है। कुषाण और गुप्तकाल में कलावंतों ने इस नगरी को देवालयों, अर्हत आयतनों, स्तूप और मूर्तियों से सुशोभित किया। यहाँ की शिल्प शालाओं में बनाई हुई लाल रंग की प्रस्तर मूर्तियाँ सारनाथ, बौधगया आदि स्थानों पर भेजी जाती थीं। मथुरा में कंकाली टीला नामक एक प्राचीन स्थान है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इस टीले के स्थान पर ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में एक जैन बस्ती रही होगी। वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में यहाँ पर खुदाई करने पर कुषाणकालीन आयागपट्ट मिला, जिस पर अष्टमंगल सहित मध्यवर्ती जिन प्रतिमा उत्कीर्ण है। दूसरे एक शिलापट्ट पर लोणशोधिका नाम की वैश्या की पुत्री वसु द्वारा अरहंत देवकुल को दान देने का उल्लेख है। इस पट्ट पर एक स्तूप व सोपानयुक्त तोरण और प्रदक्षिणापथ बहुत ही कलात्मक ढ़ग से चित्रित किया गया है। कुषाणकालीन पार्श्वनाथ की मूर्ति, जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है, एक उत्कृष्ट कुषाणकालीन शिल्पकला का नमूना मानी जाती है। महावीरजी की जन्मकथा से संबन्धित हरिण-गमेशी की मूर्तियाँ भी मिली हैं। गए तीन साल से कंकाली टीले पर पुनः उत्खनन कार्य हो रहा है। इसके फलस्वरूप यहाँ एक अतीव सुन्दर पक्की ईंटों की बनी कुषाणकालीन पुष्करिणी मिली है। इसमें एक खंडित प्रतिमा जो लेखांकित है, प्राप्त हुई है। एक विशेष उल्लेखनीय लेख की उपलब्धि, जो इस पुष्करिणी से हुई है, उसमें

आयागपट्ट पर मंगल चिन्ह सहित मध्यवर्ती जिन प्रतिमा (मथुरा से प्राप्त) दूसरी शताब्दी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मथुरा से प्राप्त दूसरा आयागपट्ट सोपानयुक्त तोरण और प्रदक्षिणापथ सहित कुषाणकालीन स्तूप (मथुरा म्यूजियम)

कनिष्क प्रथम के पंचम वर्ष में विशाखमित्रा द्वारा किये दान का उल्लेख, कदाचित् इसी पुष्करिणी से सम्बन्धित है। दूसरी भी कई सुन्दर जैन प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं।

गुप्तकालीन जैन कला

गुप्तकाल में हिन्दू मन्दिरों का प्राथमिक स्वरूप निश्चित होने लगा था। मध्यप्रदेश में सांची, देवगढ़,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाचना कुथारा, तिगोवा आदि स्थलों पर हिन्दू मंदिरों का निर्माण हो रहा था । देवगढ़ के पास अनेक जैन देवालय और उनके अवशेष मौजूद हैं । उनका काल गुप्तकालोत्तर 8 या 9वीं शताब्दी का बताया जाता है। यहाँ के अनेक शिल्पों पर गुप्तकाल का प्रभाव दिखाई देता है । देवगढ़, ललितपुर, चँदेरी, चाँदपुर, आदि स्थलों पर सहस्त्रों की संख्या में जैन प्रतिमाओं का निर्माण किया गया और तत्कालीन मंदिरों में उनकी प्रतिष्ठापना की गई। इस प्रदेश में गुप्तकालीन जैन मंदिर मिलने की संभावना है। विदिशा से दो जिन प्रतिमाओं पर रामगुप्त का उल्लेख मिला है इसी उपलब्धि पर मेरा यह अनुमान है कि गुप्तकाल में भी जैन देवालय मध्यप्रदेश में बने होंगे।

अकोटा (प्राचीन अंकोटक) नामक स्थान गुजरात में बड़ौदा के निकट है । यहाँ 1949 में डा. यू. पी. शाह के प्रयत्नों से एक अद्वितीय 68 जैन धातु मूर्तियों का संग्रह प्रकाश में आया। यहाँ पर अंकोटक-वसति नाम का जैन मंदिर रहा होगा । इस संग्रह की काँस्य मूर्तियों पर गुप्तशिल्प कला का प्रभाव दिखाई देता है। ऋषभनाथ की कायोत्सर्ग प्रतिमा और जीवन्त स्वामी की प्रतिमा के ऊपर गुप्तकाल का सौन्दर्य यथार्थ रूप से दिखाई देता है। यहाँ 7, 8, 9, 10वीं शताब्दी की कांस्य प्रतिमाएँ भी पाई गई हैं, जो बड़ौदा के संग्रहालय में सुरक्षित हैं । यह मूर्ति संग्रह बड़ौदा संग्रहालय का अलंकार माना जाता है।

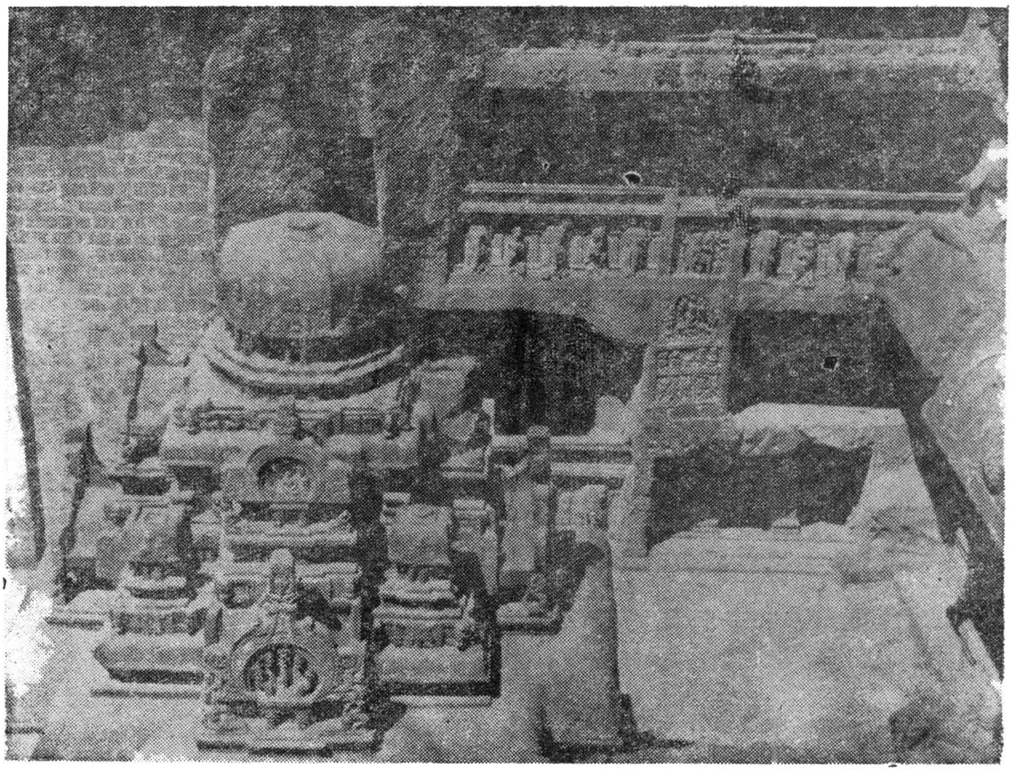

ऐलोरा स्थित जैन गुफा प्रांगण में एकाश्य मंदिर (9वीं,-10वीं शताब्दी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एलौरा की जैन गुफाएँ

चालुक्य और राष्ट्रकूट आधिपत्य में भी महान जैन-शैल-गृह कर्नाटक में बनाये गये हैं। सातवीं शताब्दी में बदामी और ऐहोली में चालुक्यकालीन जैन गुफाएँ और राष्ट्रकूटकालीन एलौरा की गुफाएँ अपनी विशेषता रखती हैं। बदामी और ऐहोली गुफाओं में पार्श्वनाथ और बाहुबली के शिल्पपट उत्कीर्ण हैं। एलोरा की गुफाओं में स्थापत्य, शिल्प और चित्रकारी का मनोहर त्रिवेणी संगम दृष्टिगोचर होता है। एलोरा में लगभग 6वीं शताब्दी से एक अखंडित कला साधना का स्त्रोत दिखाई देता है। जहाँ हिन्दू गुफाएँ समाप्त होती हैं वहाँ से ही जैन गुफाओं का आरम्भ होता है— छोटा कैलास, जगन्नाथ सभा और इन्द्र सभा जैनों की प्रमुख गुफाएँ हैं। इन जैन गुफाओं का काल 9 और 10वीं शताब्दी का माना जाता है और ये गुफाएँ जैनमत प्रेमी राष्ट्रकूट नृपति गोविन्द और अमोघवर्ष के शासनकाल में खोदी गईं। इनमें पार्श्वनाथ और बाहुबली की मूर्ति का शिल्पपट बहुत ही प्रेक्षणीय है। पार्श्वनाथ पर कमठ का किया गया आक्रमण और धरणेन्द्र यक्ष द्वारा किया गया संरक्षण बहुत ही आकर्षक है। इस शिल्प-पट्ट को देखकर बुद्ध पर मार द्वारा किये आक्रमण की याद आ जाती है जिसको अजंता की चित्रकला और शिल्पकला पटों पर सुन्दर ढंग से दिखाया गया है। यहाँ की यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियाँ भी प्रेक्षणीय हैं। एलोरा की जैन गुफाओं के भित्ति चित्रों का भारतीय कला में प्रमुख स्थान माना जाता है। जैन गुफाओं की छतों और भित्तियों पर जो शेष चित्रपटल हैं, वे अजंता और मध्ययुगी ताड़पत्रीय और हस्तलिखित चित्रकला की श्रृंखला की एक कड़ी मानी गई हैं। इन्ही भित्ति चित्रों में भारतीय चित्रकला का अखंड विकास समझ में आता है।

सुपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा (बादामी की गुफा)
गुफा क्र. 4 (7वीं शताब्दी)

पश्चिम भारतीय जैन हस्तलिखित ग्रन्थ जिसमें कई चित्र अंकित हैं, गुजरात के पाटन वौर खंभात में और राजस्थान के जैसलमेर के ज्ञान भण्डार में उपलब्ध हैं। इन ग्रन्थ के संरक्षण के लिए, जो लकड़ी के पटल ऊपर और नीचे रखे जाते थे, वे भी सुन्दर चित्रों से अलंकृत हैं। यह चित्र सम्पदा 12 वीं और 16 वीं शताब्दी के बीच की है। इन चित्र पटलों पर चित्र प्रदर्शनों में नाट्यपूर्ण गतिमानता के साथ-साथ चित्र अंकित किये गये हैं।

कर्नाटक में जैन कला वास्तु

कर्नाटक में जैन धर्म का प्रचार अति प्राचीन है। मौर्यकाल में उत्तरी भारत में जब भीषण अकाल पड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था, उससे बचने के लिए भद्रबाहु मुनि के नेतृत्व में कई श्रमण दक्षिण की ओर चले गये । भद्रबाहु मुनि ने श्रमण-बेल-गोल के निकट कर्नाटक राज्य में चन्द्रगिरी नामक पर्वत पर तपस्या करते हुए देह त्याग किया । ऐहोली में मेगुती का जैन मंदिर 644 ई० में चालुक्य नरेश द्वितीय पुलकेशी के काल में बनाया गया है ।

कर्नाटक ही नहीं अपितु समस्त भारतवर्ष का अत्यन्त अनूठा भव्य शिल्प जिसको कहा जा सकता है वह है गोमटेश्वर को श्रावण बेलगोल स्थित शैल प्रतिमा. यह एकाश्य शिल्प राछमल्ल सत्यवाक गगराजा के काल में उसके मंत्री चामण्डयराय ने बनवाया था । इस प्रचण्ड मूर्ति का समय 983 ई. माना जाता है । कर्नाटक में

गोमटेश्वर (बाहुबलि) स्वामी की एकाश्म शैल प्रतिमा, श्रवण बेलगोला, (कर्नाटक), 983 ईस्वी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चालुक्य-आधिपत्य के उत्तर काल में अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ। लकगुंडी, जिला धारवाड़ में बारहवीं शताब्दी का पार्श्वनाथ का मन्दिर है। इस मन्दिर में तथा अन्य मन्दिरों में अनेक सुन्दर जिन प्रतिमाएँ हैं। बेलगाँव में कमल बस्ती नाम का एक जैन मन्दिर है। इस देवालय की छतों की कला सौन्दर्य बहुत ही प्रेषणीय है। कानरा जिले के भटकल गांव में और मंगलौर के पास मुडबिनद्री स्थलों पर जैन मंदिरों की ऐसी विशिष्ट रचना है जिसे देखकर नेपाली स्थापत्य का आभास होता है। भटकल के मन्दिर के सामने एक ऊँचा स्तम्भ है जिन पर तीर्थंकरों की चहुमुख प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

तामिल देश में जैन प्रभाव

तामिलनाडु राज्य के पदुकोटाई जिले में कई प्राचीन जैन गुफाऐं मिली हैं। इन गुफाओं में जैन मुनियों के लिए पत्थरों पर तराशी हुई शय्याएँ मिलती हैं और यहां पाये गये ब्राह्मणी लेख ईसा पूर्व पहली शताब्दी के हैं। तामिलनाडु में और दूसरे जैन स्थापत्य कला के केन्द्र स्थान हैं किन्तु इनमें उल्लेखनीय हैं सित्तन्नवासल की जैन गुफा में अजन्ता शैली के 7 वीं शताब्दी के भित्ति चित्र सुरक्षित हैं। दूसरा महत्वपूर्ण स्थल कांचीपुरम, जिसे जिन-कांची भी कहते हैं। 640 ई. में ह्यूं एन त्संग ने लिखा है कि कांची में जैनों की एक बड़ी बस्ती थी। कांचीपुरम की इस बस्ती को तिरुपति कुण्डम् भी कहते हैं। यहाँ चोल राजाओं के आधिपत्य काल में चन्द्रप्रभ-वर्धमान स्वामी और त्रिकूट बस्ती नाम के जैन मन्दिरों का परिवर्धन किया गया। यहाँ संगीत मंडप नाम का एक भाग विजयानगर राजाओं के आधिपत्य में चित्रांकित किया गया। इस मंडप और मुखमंडल की छतों पर महावीर स्वामी के समवरण के प्रसंग चित्रित किए गये हैं इनके साथ ही ऋषभदेव और नेमिनाथ आदि तीर्थकरों के जीवन प्रसंग चित्रित किये गये हैं और हर एक प्रसंग के नीचे उचित लेख भी है।

गुजरात-एक महत्वपूर्ण जैन कला केन्द्र

गुजरात में जैन धर्म का प्रभाव बहुत ही गहरा और प्राचीन है। तलाजा और गिरनार का उल्लेख तो मैंने पहले ही किया है इसके बाद बल्लभी या वल्लभीपुर एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र रहा था। महावीर के निर्वाण के पश्चात् लगभग 980 वर्ष के उपरान्त यहाँ देवर्धिगणी क्षमा-श्रमण के नेतृत्व में एक जैनमुनि सम्मेलन हुआ था, जिसमें श्वेताम्बर जैन आगम का संकलन किया गया। श्वेताम्बर परम्परा इन आगम ग्रन्थों को प्रमाणभूत मानती है। बल्लभी में जैन बस्ती के अवशेष और कांस्य प्रतिमाएँ मिली हैं।

गुजरात में चालुक्यों के अभिपत्य काल में कुमारपाल राजा ने तारंगा में अजितनाथ का मंदिर बनवाया, जो एक प्रसिद्ध जैन तीर्थ है, यह जिला मेहसाना में सिद्धपुर के निकट है। सौराष्ट्र में गिरनार पर्वत पर और शत्रुंजय पहाड़ी पर अनेक जैन मंदिर स्थित हैं। ये दोनों स्थान महत्वपूर्ण जैन-तीर्थ माने जाते है। गिरनार में नेमिनाथ के भव्यमन्दिर का जीर्णोद्धार 1278 ई. में किया गया था। शत्रुंजय पर्वत पर; जिसको पालिताना भी कहते हैं, ग्यारह प्राकारों के बीच 500 जैन मन्दिर हैं। इनमें से कुछ तो 11 वीं शताब्दी के हैं। परन्तु बहुत से मन्दिर 16 वीं शताब्दी के बाद के हैं। 1618 ई. में यहाँ एक सुन्दर शिखर युक्त दो मंजिला मन्दिर अहमदाबाद के एक श्रेष्ठी ने बनवाया। इस मन्दिर के स्तम्भ शीर्ष पर नर्तक और वादक वृन्द उत्कीर्ण हैं। यहाँ 19 वीं शताब्दी में भी अहमदाबाद के एक नगर श्रेष्ठी ने एक मन्दिर बनवाया था जिसने पाँच तीर्थों का मानचित्र भी उत्कीर्ण कराया था।

अलौकिक आबू

राजस्थान के आबू पर्वत के अत्यन्त सुरम्य स्थल पर चार प्रमुख देवालय हैं। इनमें विमलशा और तेजपाल ने क्रमशः 1032 ई.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और 1232 ई. में शुभ संगमरमर के मन्दिर बनवाये जो अपने विलक्षण सौन्दर्य से दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देते हैं। यहाँ का उत्कीर्ण कलाकौशल बहुत ही कोमल और बारीकी का है। ऐसा लगता है कि शुभ्र पाषाण को तराश कर निर्माण किया गया है। यह जनश्रुति प्रचलित है कि हथौड़ा और छैनियों से पत्थर को काटा नहीं गया अपितु छोटे औजारों द्वारा तराशने से निकले हुए चूर्ण की माप के अनुसार कारीगरों को मजदूरी दी जाती थी। इसके मंडप की छत पर उत्फुल्ल कलाकृति का अकन और अप्सराओं का मूर्ति शिल्प देखकर ऐसा लगता है कि इतना कोमल और कलापूर्ण काम कैसे किया गया होगा। कलापूर्ण चातुर्य के चरमोत्कर्ष की अनुभूति इस मन्दिर के दृष्टि-गोचर से होती है।

मध्यप्रदेश में खजुराहो के चन्देल राजाओं ने जो मन्दिर बनवाये हैं उनमें एक जैन मन्दिर समूह भी है। इसमें से पार्श्वनाथ मन्दिर चन्देल नृपति धंग की प्रेरणा से एक जैन श्रावक ने 955 ई. में बनवाया था। इसकी रचना खजुराहो के मन्दिर से थोड़ी अलग है परन्तु इसका वास्तु कौशल और शिल्प सौन्दर्य अत्यन्त मनोहारी है। भारतीय शिल्प कला का परमोत्कर्ष यहां के मूर्ति शिल्प में परिलक्षित होता है। राजस्थान में और कई जैन स्थापत्य के केन्द्र हैं। जिनमें से 3 या 4 का उल्लेख करना अनिवार्य है। 1439 ई. में राणकपुर का 26 मंडप और 420 स्तम्भ युक्त आदिनाथ का चतुर्मुख मन्दिर स्थापत्य कला का उत्कृष्ट नमूना है। गर्भगृह चतुर्मुखी है और प्रत्येक दिशा में प्रांगण युक्त चार मंदिर हैं, जिनकी रचना अत्यन्त कौशल पूर्ण है। प्राकार में 86 लघु देव कुलिकाएँ है। इतना सब होते हुए भी प्रकाश योजना ऐसी है कि मन्दिर का प्रत्येक कोना प्रकाशित रहता है, जिससे उसके कलापूर्ण स्तम्भों और छतों की नक्काशी के काम को मन भर के देखा जा सके। चित्तौड़ किले पर स्थित चैत्यालय के सामने का 25 मीटर ऊँचा मानस्तम्भ स्थापत्य कला का उत्कृष्ट नमूना है, इस स्तम्भ पर आदिनाथ और अन्य तीर्थंकरों की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। जोधपुर जिले में

अम्बिका (सरस्वती) की कलात्मक संगमरमर प्रतिमा
(पल्लूगांव—राजस्थान से प्राप्त)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओसिया नाम के ग्राम में एक प्रेक्षणीय महावीर मन्दिर है। इस मन्दिर के स्तम्भों की नक्काशी बहुत सुन्दर है यह मन्दिर गुर्जर प्रतिहार नरेश वत्सराज (770–840) के समय का है परन्तु इसका सभा मंडल 10 वीं शताब्दी में सन् 926 का है। जैसलमेर में 15 वीं शताब्दी के जैन मन्दिर हैं। जब भारत वर्ष के उत्तरी प्रदेशों में मन्दिर स्थापत्य निर्माण समाप्त हो गया था तब यहाँ एक कलात्मक जैन मन्दिर समूह का निर्माण हुआ।

गुफाओं और शैल मन्दिरों की निर्मिति में लगभग अंतिम प्रयोग ग्वालियर के दुर्ग के परिसर में हुआ। यहाँ की गुफा में उत्कीर्ण विशाल जिन प्रतिमाएं तोमर राजा डूंगर सिंह और कीर्ति सिंह के जमाने में बनाई गईं। इन प्रतिमाओं के सौन्दर्य से उनकी भव्यता दर्शकों को अधिक प्रभावित करती हैं। मध्ययुगीन जैन धर्म शिल्पकला का सर्वोत्कृष्ट नमूना मानने योग्य राजस्थान के पल्लू ग्राम से प्राप्त सरस्वती की मूर्ति है जो दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में संगृहीत है। यह मूर्ति भारतीय कला को प्रदान की गई अमोल भेंट है। यथायोग्य रूप, भेद प्रमाण बद्धता और लावण्य का सुयोग्य मिश्रण इस मूर्ति में दिखाई देता है।

जैन कला सम्पदा का मैंने विहंगमावलोकन ही किया है इनके अतिरिक्त अनेक वस्तु और वास्तु हैं। जिनका मैंने उल्लेख ही नहीं किया। इन चीजों का अध्ययन विद्या प्रेमी विद्वानों को करना चाहिए। मेरी आशा है कि 2500 वां भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव के निमित्त से इस सुन्दर विषय की अनेक छटाऐं प्रकाश में आयेंगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org